सुरसुन्दरी

प्रकाशक

वृहद् (वड़) गच्छीय श्रीपूज्य जैनाचार्य्य

श्रीचन्द्रसिंह सूरीश्वर शिष्य

पंडित काशीनाथ जैन

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोड, के "नरसिंह प्रेस में"

मैनेजर पण्डित काशीनाथ जैन

द्वारा मुद्रित

प्रथमबार २०००] सन् १९२४ [मूल्य ॥)

भूमिका ।

यह कहानी सती-धर्मकी महिमा बतलाने के लिये लिखी गयी है। सतीपर आये हुए लाखों सङ्कट किस तरह उसके धर्मके प्रतापसे हवामें उड़ जाते हैं, यही बतलाना इस कहानी का उद्देश है। यह जैन शास्त्रकी एक प्रसिद्ध कथा है ; पर इसे वर्तमान समयके पाठकोंके रुचिकर बनानेके लिये उपन्यासका रूप दे दिया है। आशा है, कि इस मालाकी अन्यान्य पुस्तकोंकी भाँति यह नैतिक उपन्यास भी पाठकोंको अवश्य ही प्रिय प्रतीत होगा।

हमें यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है;कि इस समय पाठकोंको इस तरहकी कहानियाँ

बहुतही रुचिकर मालूम हो रही हैं। इसीलिये हम भी उत्साहित होकर एकके बाद दूसरी पुस्तक प्रकाशित करते चले जाते हैं। हमारा उद्देश कथा-कहानीके बहाने सभी तरहके छोटी-बड़ी उमरवाले पाठकोंके मनमें नीति और धर्म का बीज वपन करना है।

यदि हमारा यह उद्देश किसी अंश में सफल हुआ, तो हम अपनेको परम कृतार्थ मानेंगे।

यहाँ पर हम पाठकोंको यह सूचना भी दे देना उचित समझते हैं, कि इस तरह की प्रायः बीसों पुस्तकें और तैयार हो गयी हैं, जो क्रमशः बारी-बारीसे पाठकोंके सम्मुख उपस्थित की जायेंगी। आबालवृद्ध वनिता सबके लिये उपयोगी बना देनेकी इच्छासे इन सभी पुस्तकों की भाषा खूब सरल रखी गयी है।

२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता। } निवेदक— काशीनाथ जैन।

सकल शास्त्र-सम्पन्न, शान्तमूर्त्ति, चारित्रपात्रादि गुणगणा-
लंकृत, श्रद्धास्पद, विद्वद्वर्य्य श्रीमान् माननीय पूज्यवर्य्य
काशी-निवासी बृहत्खरतरगच्छीय दिग्मण्डलाचार्य
श्रीनेमिचन्द्रसूरीश्वरजी

पूज्यवर्य्य ?

आपने जैन समाजकी प्रभावनाके लिये अतुलनीय परिश्रम
कीया है, आपने अनकानेक विधर्मियोंको धर्मोपदेश
देकर सन्मार्गारूढ़ कीये हैं, एवं आपने प्राणी
रक्षाके काममें असाधारण उद्योग कीये हैं,
उन्हीं सब गुणोंको स्मरण कर यह मेरी
'सुरसुन्दरी' नामक लघु पुस्तिका आप
श्रीके कर-कमलोंमें सादर सविनय
भेंट करता हूं। आशा है,
स्वीकार करेंगे।

आपका
काशीनाथ जैन

प्रेम—कलह।

उस दिन ग्रीष्मका मध्यान्ह-काल था। सूर्य की प्रखर किरणें पृथ्वीको तवेकी तरह तपा रही थी। मारे गरमीके लोगोंके प्राण व्याकुल हो रहे थे। कोई गरमीसे बचनेके लिये बड़के पेड़की ठंडी छायाके नीचे जा पड़ा था, तो कोई घरके किवाड़ बन्द कर लूकी लपटसे अपने शरीरकी रक्षा कर रहा था। ऐसे ही समय एक विद्यालयमें कुछ लड़के और लड़कियाँ परस्पर बातें कर रही थीं। उनमेंसे बहुतेरे मीठी नींदकी बहार लेते हुए दोपहरी काट रहे थे, कोई बैठे-ही-बैठे

ऊँघ रहे थे और कोई नींद न आनेके कारण मीठी गप—शपमें ही समय बिता रहे थे। इन मौजी जीवोंको गरमीकी कुछ भी परवा नहीं थी।

बात बहुत पुराने ज़मानेकी है। उस समय बालकों और बालिकाओंके लिये अलग-अलग पाठशालाएँ नहीं थीं। दोनों एक ही साथ एक ही गुरुसे विद्या ग्रहण करते थे। साथ ही आजकलकी तरह ऊँच-नीच और अमीर-गरीबका वैसा भेद भाव भी नहीं था। एक ही चटाईपर बैठकर राजा और रङ्क दोनोंके ही बालक गुरुके निकट विद्याभ्यास किया करते थे।

अहा! हमारे देशके वे दिन भी कैसे अच्छे थे! लोग कहते हैं, कि साम्य-वाद युरोपकी ईजाद है; पर हम तो डंकेकी चोट यह बात कहनेके लिये तैयार हैं, कि साम्यवादका जो आदर्श प्राचीन भारतमें पाया जाता है, वह युरोपको कभी सपनेमें भी नहीं दिखाई दे सकता। उन दिनो सचमुच यहाँ राजा और रङ्क, धनी और निर्धन, ब्राह्मण और वैश्यमें परस्पर परम प्रीति और सौहार्द था। पर जैसे धीरे-धीरे इस देशकी सभी अच्छी चीज़ें चौपट हो गयीं, वैसे ही वह पारस्परिक सद्भाव निरभिमानिता, सौहार्द और साम्य-विचार भी दूर हो कर जहाँ देखो, वहाँ विषमता, वैर और विरोधकी ही तूती बोल रही है। अस्तु! जिस पाठशालाका हमने ऊपर ज़िक्र किया है, वह भी इसी तरह की एक प्राचीन शिक्षा—संस्था थी। उसमें धनी और निर्धन दोनोंके बालक और बालिकाएँ सभी विषयोंकी शिक्षा लाभ

किया करते थे। उस पाठशालामें प्रत्येक शास्त्रके अच्छे-अच्छे ज्ञाता अध्यापनका कार्य करते थे।

जिस दिनकी बात हम लिख रहे हैं, उस दिन दोपहरमें गुरु लोग अपने-अपने घर भोजन तथा विश्राम करनेके लिये चले गये थे। विद्यार्थी लोग आपसमें दिल्लगी, हँसी, बातें और विवाद करते हुए समय बिता रहे थे। एक ओर एक बालक और बालिका भी न मालूम क्यों सबसे अलग होकर बातें कर रहे थे।

उस बालकका नाम अमरकुमार था। वह चम्पा-नगरके नामी—गरामी सेठ, सरल, सदाचारी, श्रावक-धर्ममें प्रवीण, परम उदार धनावहका पुत्र था। पिताकी प्रथम सन्तान होनेके कारण वह उनका बड़ा ही प्यारा-दुलारा था। यद्यपि उसकी माता मारे लाड़-प्यारके उसे पढ़ने-लिखनेका परिश्रम नहीं उठाये देना चाहती थी, तथापि पिताके आग्रह और उत्साहसे उसे विद्यालयमें भर्ती हो कर विद्याभ्यास करना ही पड़ा। वह बड़ा ही कुशाग्रबुद्धि था। इसलिये उसके गुरु जब कभी कोई बात उसे बतलाते, तो वह उसे झट याद कर लेता था। धीरे—धीरे अमरकुमार अपने साथियोंमें सबसे तेज़ निकल गया और गुरुओंने उसे पाठशालाके सभी छात्रोंके ऊपर देख-भाल करनेका भार सौंप दिया। दोपहरके समय जब पाठशालामें भोजनादिके लिये छुट्टी होती और गुरु लोग अपने-अपने घर चले जाते, तब अमरकुमार पर ही पाठशालाकी देख-रेखका भार सौंप जाते

थे । इसी लिये सभी छात्र उसका रोब मानते थे और उसकी डाँट-डपट सह लिया करते थे ।

इस समय भी अमर वही काम कर रहा था । उसीके डरके मारे गुरुओंके नहीं रहनेपर भी पाठशालामें शान्ति विराज रही थी । अमरकुमार उस समय सभी विद्यार्थियों पर निगाह रखते हुए उसी पाठशालामें पढ़नेवाली एक बालिकाके सङ्ग बात कर रहा था । बालिका उमरमें उससे दो वर्ष छोटी थी ।

यह बालिका उसी नगरीके राजा रिपुमर्दनकी कन्या थी । इसके सिवा राजाको और कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये वे इसे ठीक पुत्रके ही समान मानते और प्यार करते थे । इसी लिये राजाने उसे पाठशालामें पढ़नेके लिये भेजा और गुरुओंको इस बातकी चेतावनी दे दी थी, कि इसे स्त्रियोंके योग्य शिक्षा देनेके अतिरिक्त पुरुषोचित शिक्षा भी दी जाये । इसीलिये वह भी गृह-प्रबन्ध, पाक-शास्त्र आदिके अतिरिक्त व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष और वैद्यक आदि विषयोंकी भी शिक्षा प्राप्त कर रही थी । इसकी भी बुद्धि बड़ी तीव्र थी, इसलिये यह भी अपने अध्यापकोंकी अत्यन्त कृपापात्री बन गयी थी । समान प्रतिभा और एकसी बुद्धिमत्ता होनेके कारण अमरकुमारके साथ इस की ख़ूब पटती थी । दोनों सदा आपसमें मिलते-जुलते और तरह-तरहके विद्या-विनोद किया करते थे । बालिकाका नाम सुरसुन्दरी था ।

इस समय भी उन दोनोंमें इसी तरहकी चर्चा चल रही है ।

इस गाँठमें क्या बँधा है, यही देखने लगा। उसने गाँठ खोल कर देखा, तो सात कौड़ियाँ बँधी पायीं।

(पृष्ठ ५)

बातें ही करते-करते बालिकाको नींद आने लगी। वह बोलती ही बोलती एकाएक नींदमें बेसुध हो गयी। अमरकुमार उसे जगाना अनुचित समझ कर वहाँसे उठकर जाने लगा। इतनेमें उसकी नज़र उस बालिकाके आँचलमें पड़ी हुई गाँठ पर पड़ी।

वह कौतूहल परवश हो जाते-जाते पीछे लौट आया और उस गाँठमें क्या बँधा है, यही देखने लगा। उसने गाँठ खोल कर देखा, तो उसमें सात कौड़ियाँ बँधी पायीं। अमरकुमारने उन कौड़ियोंको लेकर अपने एक सहपाठीको दे दिया और कहा,—"भाई! तुम इन कौड़ियोंको बाजारमें ले जाओ और जितनी मिठाइयाँ इतने दामोंमें मिलें लेते आओ।"

यह सुन, वह विद्यार्थी कौड़ियाँ लिये हुए बाजारमें चला गया और थोड़ी ही देर में मिठाइयाँ लिये हुए चला आया, इसके बाद अमरकुमारने मिठाइयाँ लेकर सब यार-दोस्तोंको बाँट दीं। ज्यों ही सब लोग मिठाई खाकर तैयार हुए, त्योंही राजकुमारीकी नींद एकाएक खुल गयी।

राजकुमारीके लिये भी थोड़ीसी मिठाई, हिस्सेके मुताबिक़, अलग निकाल कर रख दी गयी थी। राज-कुमारीके उठते ही अमरकुमार उसे मिठाई देने लगा। राजकुमारीने पूछा,—"वाह! यह मिठाई कहाँसे आयी?"

अमरने कहा,—"अरी, जानती नहीं। तुम्हारे आँचलके छोरमें जो सात कौड़ियाँ बँधीं हुईथीं, उन्हींसे ये मिठाइयाँ मगायी गयी हैं।

यह सुनतेही राजकुमारीको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उसने बिगड़ कर कहा,—"अरे वाहरे अनोखे दानी! पराये मालपर दानी बनना तो तुम्हें ख़ूब आता है! मेरी कौड़ियाँ चुराकर तुमने ख़ूब साथियोंके मुँह मीठे किये। मेरे सोनेका तो तुमने ख़ूब फ़ायदा उठाया! क्या तुम इतने दिनसे पाठशालामें यही सब सीख रहे हो? ठीक जान लो, ऐसे कर्म कभी अच्छे नहीं कहलाते, उलटे ऐसा करनेवाले बुरे ही बनते हैं। न मालूम तुम्हें यह दुर्बुद्धि कहाँसे पैदा हुई! क्या उस समय तुम्हारी हियेकी आँखें फूट गयी थीं, जो तुम इस तरह परायी वस्तु चुराने गये? तुमने ऐसा किससे सीखा? गुरुजीसे या पोथियोंसे? शोक है, तुमने गुरुजीको भी बदनाम किया और अपनी सारी विद्या-शिक्षा पर पानी फेर दिया। माँ-बाप जानते होंगे, कि तुम यहाँ अच्छे-अच्छे गुण सीख रहे होगे; पर तुमने उनकी आशा ख़ूब पूरी की! बड़े भले आदमीको पाठशालाके गुरुओंने सब छात्रोंका सरदार बना दिया है। अफ़सोस! तुम्हें शर्म भी नहीं आयी!"

राजकुमारीकी यह दिलमें चुभनेवाली फटकार सुन, अमरकुमारने बड़ी नरमीके साथ कहा,—"राजकुमारी! तुम इतनी ओछी सी रक़मके लिये ऐसी लाल पीली हो रही हो? भला सात कौड़ियोंकी बिसात ही क्या है? फिर तुम्हें इतना दुःख काहेको हो रहा है?"

राजकुमारीने फिर बिगड़ कर कहा,—"उन्हीं सात कौड़ि-

थोंसे मैं एक राज्य मोल ले सकती थी । तुम क्या जानो, कि उनका मोल कितना था ? अरे, चोर तो फिर चोर ही है—चाहे हीरेका हो या खीरेका ?"

यह सुन, अमरकुमारने सोचा,—"इसका बाप इस नगरीका राजा है, इसलिये इससे बहुत बोलचाल करना ठीक नहीं है ?"

यही सोचकर वह चुप रह गया; पर इस बातकी चोट उसके कलेजेमें बैठ गयी ।

दूसरा परिच्छेद

धर्म्मका अंकुर ।

इस घटनाको बीते बहुत दिन हो गये। समय शीघ्र गतिसे निकलता चला। क्रमशः राजकुमारी और अमरकुमारकी शिक्षा पूरी हो गयी और दोनोंही अनेक शास्त्रोंमें पण्डित हो गये। तब उनके माता-पिताने उनको धार्मिक शिक्षा दिलवानेके लिये एक जैनाचार्यकी सेवामें भेज दिया। वहाँ भी उन लोगोंने ख़ूब मन लगाकर धार्मिक ज्ञान लाभ करना आरम्भ किया।

एक दिन पास ही की एक पौषधशालामें एक साध्वीजीके पास जा कर सुरसुन्दरीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और बड़ी ललकके साथ नवकार-मन्त्रकी महिमा जानने की इच्छा प्रकट की। यह सुन, साध्वीजी बड़ी प्रसन्न हुईं और कहने लगीं,—"राजकुमारी! परमेष्ठी—मन्त्र नवकार शाश्वत और

चौदह पूर्वका सार है, श्रद्धा-पूर्वक इस मन्त्रका जाप करनेवा-लोंको सब सुख प्राप्त होते हैं और दुःख दूर हो जाते हैं। उसे शिवकुमारकी ही तरह लक्ष्मी प्राप्त होती है।"

यह सुन, राजकुमारीने पूछा,—"वह शिव कुमार कौन था ?

साध्वीने कहा,—"किसी समय रत्नपुरी नामकी नगरीमें यशोभद्र नामका एक सेठ रहता था, जो श्रावकके सब धर्मों का पालन करता, देव-पूजामें लीन रहता और सदा परमेष्ठीका ध्यान पूर्वक स्मरण किया करता था। उसके एक पुत्र था। जिसका नाम शिवकुमार था वह बड़ा भारी मूर्ख था, इस लिये सातों व्यसनोंमें सदा लिपटा रहता था। उसके पिताने उसे लाख समझाया बुझाया; पर उसकी समझमें कुछ भी नहीं आया। एकदिन जब सेठने देखा, कि अब तो मेरी मौतकी घड़ी आ पहुँची है, तब अपने पुत्रको पास बुलाकर मीठे स्वरसे उसे शिक्षा देता हुआ कहने लगा,—"पुत्र! मेरे जीवन कालमें तो तुमने जैसा किया, वैसा किया, पर देखना; मेरे मरने बाद एक बातका जरूर ख़याल करना। इससे मेरी आत्मा बड़ी सुखी होगी। मैं यही कहना चाहता हूँ, कि जब कभी तुम्हारे ऊपर विपत्ति आये, तब नवकार मन्त्रका स्मरण जरूर करना। यह कहते कहते बेचारे बूढ़े सेठकी बोलती बन्द हो गयी। थोड़ी ही देरमें उसकी देह छूट गयी। पिताके मरजाने पर भी शिवकुमार पहलेहीकी तरह मौज उड़ाता रहा। देखते-देखते उसकी सारी सम्पत्ति धूलमें मिल गयी।—सारी

मान-मर्यादा चौपट हो गयी। जो एक दिन बड़ा भारी सेठ कहा जाता था। वही गली गली भीख माँगता फिरने लगा। इसी समय एक दिन उसे रास्तेमें एक धूर्त्त साधु मिल गया। उसने साधुको पहुँचा हुआ जान कर उससे अपनी हीन दशाका हाल कह सुनाया। उस धूर्त्तने उसे खूब हरा बाग़ दिखलाया और उसे धनवान् बना देनेका लालच दिखाया। बेचारा ग़रीबीका मारा हुआ झट उसकी बातको सच मानकर उसीके कहे अनुसार चलनेको तैयार हो गया। इसके बाद उस कपटी साधुने कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन स्मशानमें जाकर एक मुर्दा अपने पास ला रखा और उसके हाथमें एक नङ्गी तलवार पकड़ा दी। शिवकुमार उसके आज्ञानुसार उस मुर्देके पैर दबाने लगा। इसके बाद वह मन्त्र जपने लगा। धीरे-धीरे उसके जापका असर होना शुरु हुआ। वह मुर्दा हिलने लगा। यह देख, शिवकुमारके मनमें यह सन्देह होने लगा, कि कहीं इस पाजीने इसी मुर्देके हाथों मुझे मरवा डालनेका तो ढङ्ग नहीं रचा है? यह शक पैदा होतेही उसकी सारी देहके रोंगटे खड़े हो गये, आत्मा काँप गयी और डरके मारे आँखोंके आगे अन्धेरा छा गया। इसी समय एकाएक उसे अपने पिताकी बात याद आ गयी। बस, उसने उसी समय तन, मन और वचनसे नवकार-मन्त्रका जाप करना शुरू किया। इसका परिणाम यह हुआ, कि वह मुर्दा बराबर ऊपर उठनेकी चेष्टा तो अवश्य करता था, पर हर बार नीचे गिर पड़ता था। इस तरह

उसके हाथकी नङ्गी तलवार शिवकुमार पर वार न कर सकी। यह लीला देख, उस मुर्देपर जो भूत वैताल सवार थे, उनको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने बिगड़ कर उस ढोंगी साधुका ही सिर काट डाला। मरनेके साथही उस साधूकी सारी देह सोनेकी हो गयी। यह देख कर शिवकुमार को बड़ा अचम्भा हुआ और वह मन-ही-मन नवकार मन्त्रकी बार-बार बड़ाई करने लगा। उसने सारी रात वहीं बितादी। सवेरे राजा की आज्ञानुसार वह उस सोनेके पुतलेको अपने घर ले गया। घर लाकर उसने उसका सिर और पेट छोड़कर और सब अङ्ग दानमें दे डाले; पर शिवकुमार यह देख और भी अचरज में आया, कि रातके समय वह देह फिर ज्योंकी त्यों हो गयी। सच है, देवताकी महिमाकी कोई थाह नहीं पा सकता। देखते-देखते थोड़ेही दिनोंके अन्दर शिवकुमारके घर धन दौलतका ढेर लग गया। कुछ दिन बाद अच्छे गुरुसे भेंट हो जाने पर, उनके हुक्मसे उसने सोनेका चैत्य बनवाया और उसमें मणिमय प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की। अन्तमें शरीर छोड़नेके समयतक लगातार धर्माचरण करते हुए उसने मुक्ति भी पाली। इसलिये हे सुरसुन्दरी। नवकारकी महिमा अपार है। इससे लोकमें सुख और परलोकमें सिद्धि मिलती है। जो मनुष्य शुद्ध मनसे सच्ची श्रद्धाके साथ बार-बार इस मन्त्रका जाप करता है। वह निस्सन्देह तीर्थङ्कर-गोत्रको प्राप्त होता है।"

यह उपदेशमयी कथा सुन, सुरसुन्दरीने उसी समय

प्रतिज्ञा की, कि मैं..शरीरमें प्राण रहनेतक प्रतिदिन पूरी श्रद्धाके साथ इस मन्त्रके ढाई सौ जाप किया करूँगी ।

इसतरह सुरसुन्दरीके मनमें धर्मका भाव जाग्रत हुआ और वह क्रमसे बढ़ता चला गया। सच पूछिये, तो कच्ची उमरमें ही बालकों या बालिकाओंके चित्तमें अच्छे संस्कारोंके बीज बोये जाने चाहियें। जिसमें आगे चलकर वे संस्कार उत्तम फल लायें और जीवनको सब तरहसे सुखी, सफल और सुन्दर बनायें।

तीसरा परिच्छेद

विवाहकी सलाह।

पुरुष,—"प्रिये। हमारी लड़कीने तो थोड़ीही उमरमें बहुतसी विद्यायें सीखली और सब तरहसे पण्डिता तथा सुशिक्षिता कहलाने योग्य होगयी; पर मैं चारों ओर नज़र दौड़ाकर हार जाता हूँ, पर कहीं कोई योग्य वर दिखलाई नहीं देता, जिसके साथ उसका विवाह कर दूँ।"

नारी,—"यही तो मैं भी कहना चाहती थी। बेटी अब बहुत बड़ी हो चली, बहुत पढ़ लिख गयी, अब उसका जल्दीसे कहीं अच्छे घर-बार देखकर ब्याह कर देना चाहिये। आपका इतने दिन इस ओर ध्यान ही नहीं गया, नहीं तो अबतक हमारी लड़की कभीकी ब्याही जा चुकी होती।"

पुरुष,—"प्यारी! तुम ऐसा न सोचो, कि मैं आजतक बराबर इस ओरसे उदासीन बना रहा। नहीं, यह बात नहीं

है। कन्याका पिता कभी निश्चिन्त नहीं रह सकता। ज्यों ज्यों लड़की बड़ी होती जाती है, त्यों-त्यों उसके पिताकी चिन्ता बढ़ती जाती है। मैं कभी भी अपनी लड़कीकी ओरसे बेफिक्र नहीं हुआ। मैं सदा इसी सोचमें डूबा रहता हूँ, कि किस भाग्यवानके साथ अपनी कन्याका विवाह करूँ। जो इसे सदा सुखी रख सके। ऐसी पढ़ी-लिखी, सुशीला लड़की चाहे जिस किसीके साथ कैसे ब्याही जा सकती है? बेजोड़ ब्याहका नतीजा कभी अच्छा नहीं होता।"

नारी,—"देखिये, मैंने सुना है, कि इसी नगरके रहनेवाले धनावह सेठका लड़का अमरकुमार बड़ाही सुयोग्य और विद्वान् निकला है। उसने भी उसी पाठशालामें शिक्षा प्राप्त की है, जिसमें हमारी लड़की पढ़ती थी। इसलिये आप एक बार उसे बुलाकर भी देख लीजिये और उसके पितासे बातचीत करके शीघ्र ब्याह पक्का कर लीजिये। यह सम्बन्ध मुझे तो बहुतही अच्छा जँचता है। आगे आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये।"

एक दिन दिनके तीसरे पहर अपने महलके एक सजे-सजाये कमरेमें बैठे हुए राजा रिपुमर्दन और उनकी रानी रतिसुन्दरीमें इसी प्रकार बातें हो रही थीं। कहना व्यर्थ है, कि इस समय वे अपनी कन्या, राजकुमारी सुरसुन्दरीके ही ब्याहकी चर्चा कर रहे थे। सुरसुन्दरी अब ब्याहने योग्य अवस्थाको पहुँच गयी थी, इसी लिये माता-पिताको उसके ब्याहकी बड़ी चिन्ता हो रही थी; परन्तु वे कहीं अपनी कन्याके योग्य सब विद्याओंका

जाननेवाला गुणी और पण्डित वर नहीं देख पाते थे, इसी लिये उनकी चिन्ता और भी बढ़ गयी थी।

एकाएक रानीके मुँहसे अमरकुमारकी प्रशंसा सुनकर राजा रिपुमर्दनको ठीक वैसाही आनन्द हुआ, जैसा किसी डूबते हुएको तिनकेका सहारा पाकर होता है। उन्होंने उसी समय बाहर आकर अपने मन्त्रीको सेठ धनावहको बुलवानेकी आज्ञा दी। थोड़ीही देरमें सेठ दरबारमें आपहुँचा। राजाने उसका उचित आदर-सत्कार कर उसे अपने पास बैठाया और कुशल मङ्गल पूछनेके बाद उसके पुत्रके साथ अपनी कन्याका विवाह कर देनेका प्रस्ताव किया। सेठ झटपट राज़ी हो गया। उसके नहीं राज़ी होनेका कोई कारण भी तो नहीं था? क्योंकि जिस राजाके राज्यमें वह रहता था, वही जब उसके घर अपनी बेटी ब्याहनेको तैयार होगया, तब उसके सौभाग्यका क्या कहना? वह तो यह प्रस्ताव सुनतेही धन्य-धन्य होगया।

सेठने कहा'—"पृथ्वीनाथ! आपकी आज्ञा मेरी सिर-आँखों पर है। अब आपकी जभी इच्छा हो, तभी मैं ब्याहके लिये तैयारी करनी शुरु कर दूँगा।"

राजाने कहा,—"अब इस कार्यमें विलम्ब करना उचित नहीं; क्योंकि शुभ कार्योंमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। मैं अभी ज्योतिषियोंको बुलवाकर घड़ी-मुहूर्त्त दिन-वार दिखलवाता हूँ। वे जब ब्याह करनेको कहेंगे। तभी ब्याह कर देना ठीक होगा।"

उसी समय ज्योतिषी लोग भी पोथी-पत्रा लिए हुए आ

पहुँचे और लग्नका विचार होने लगा। बहुतही थोड़े दिनोंकी तिथि निश्चित हुई। सेठने खुशी-खुशी घर आकर अपने पुत्रकी शादीकी तैयारियाँ करनी शुरू कीं।

उसी दिनसे दोनों घरमें बधावे बजने लगे। सारे नगरमें आनन्द, उत्सव, गाना-बजाना, आमोद-मङ्गल, उछाह-उत्साह और रङ्ग उमङ्ग छा गयीं।

चौथा परिच्छेद ।

सङ्कल्प ।

ब रसातका ज़माना है। आकाशमें नित्य मेघमाला छायी रहती है। अभी आसमान साफ़ है। सूरज चमक रहे हैं। कड़ाकेकी गरमी पड़ रही है। इसी समय न जाने किस कोनेसे एकाएक एक बादलका टुकड़ा आकाशमें दिखाई दिया। देखते-देखते सारा आकाश बादलोंसे ढक गया। सूरज छिप गये। बादल गरजने और रह-रहकर बिजली कड़कने लगी। देखते-ही-देखते बड़ी-बड़ी बूँदें भी बरसने लगीं। घन्टों मुसल-धार वर्षा हुई—सारे जल-थलमें जल-ही जल भर गया।

बरसातका यही तो मजा है, कि लगातार रिम-भिम पानी बरसता रहे। लोग भींगते रहे। खेत और मैदान हरे होते रहें। सूखे हुए पेड़ोंकी जड़े भी जलसे सिंच आयें। इसी लिये तो जलका एक नाम जीवन भी है। यदि बरसात न हो, आकाशसे अमृतके समान जलकी वर्षा न हो, तो पृथ्वी न तो अन्न दे, न कन्द-मूल। फिर तो लोग आपही तड़प-तड़पकर मर जायें!

अस्तु, बरसातकी ऋतु यों तो मनुष्यही क्यों जगत्के सभी

चराचर जीवोंके लिये बड़े कामकी है; पर पथिकोंके लिये तो यह बड़ी विकट है। इस ऋतुमें सभी नदी-नाले उमड़ आते हैं। रास्ते सदा कीचड़से दल-दलका मज़ा दिखाने लगते हैं और जगहकी बरसाती हवा लगने और बरसातका गदला पानी पीनेसे कई तरहकी बीमारियाँ हो जानेका भय रहता है। इसीलिये पहले जमानेके लोग बरसातके चारों महीने घर छोड़ कहीं नहीं जाते थे और जो पहलेसे घर छोड़कर परदेशमें छाये रहते थे, वे भी बरसातके पहले ही घर चले आते थे। इसका एक कारण यह भी था, कि आजकी तरह रेलोंका जाल इस देशकी छातीपर नहीं बिछा था और बरसातमें सफर करना लोगोंको हर तरहसे दुःखदायी मालूम पड़ता था।

आज इसीलिये बरसोंसे विदेश गये हुए सेठ धनावहके जहाज़ लौट आये हैं। इस बारकी यात्रामें सेठ धनावहने करोड़ोंकी सम्पदा कमायी है और बहुतसे अनुठे रत्न साथ लिये हुए लौटा है। सेठ धनावह चम्पा-नगरीका ही क्यों, इस सारे प्रदेशका ही एक बहुत बड़ा सौदागर है और प्रायः व्यापार करनेके लिये विदेशोंमें यात्रा किया करता है। इस तरहसे उसने अपने जीवनमें अनन्त धन कमा कर बटोर रखा था।

इधर जबसे अमरका ब्याह हुआ है। तबसे वह कई दफ़े बाहर जाकर माल बेच आया और हरबार धन—रत्नोंका ढेर लिये हुए घर लौटा है। सुरसुन्दरीको यहाँ आनेपर किसी प्रकारका कष्ट कभी नहीं उठाना पड़ा। वह सदा मनमाना

भोग विलास करती और हीरे मोतियोंके ढेरपर लोटा करती थी। परन्तु उसका जीवन केवल धनसे होनेवाले सुखोंसे ही आनन्दित होनेवाला नहीं था। उसके प्राणोंको जैसे प्रेमी हृदयकी चाह थी, उसके स्वामी अमरकुमारके प्राण ऐसे ही थे। इसीलिये वह अपनेको बड़ी भाग्यवान् समझती और सदा अपने स्वामीकी बड़ाई अपनी सखी—सहेलियोंसे किया करती थी, उसकी रहन-सहन भी बड़ी सीधी-सादी थी और हृदयके प्रेमके आगे सभी रत्नों और सम्पदाओंको धूल समझती थी।

यदि सच पूछिये, तो सुरसुन्दरी जैसी पढ़ी-लिखी बुद्धिमती नारीके आचरण ऐसे होने भी चाहियें, जिनकी ओर कभी कोई ऊँगली न उठा सके। स्वामी ही स्त्रीकी गति, मति और जीवनके सर्वस्व हैं। प्रत्येक नारीका यह कर्त्तव्य है, कि वह अपने स्वामीको ही अपना गुरु, मित्र, सहायक, देवता, ईश्वर—सभी कुछ समझे और उन्हींके ऊपर अपने जीवनको न्योछावर करदे। जो नारी ऐसा करती है, वही सती और पतिव्रता कहलाती है। उसीके करते उसके पिता और ससुर दोनोंके कुल तर जाते हैं और वह मरने बाद भी अपनी कीर्त्ति संसारमें छोड़ जाती है। अस्तु।

सेठ धनावहके परदेशसे लौटनेके बाद एक दिन सन्ध्याके समय सुरसुन्दरी अपने स्वामीके साथ बैठी हुई तरह-तरहकी बातें कर रही थी। इसी समय अमरकुमारने कहा,—"प्यारी!

मेरी तो आज कई दिनोंसे यही इच्छा हो रही है, कि मैं पिताजीसे आज्ञा माँग कर कहीं परदेश चला जाऊँ और जैसे वे बराबर धन उपार्जन करके ले आया करते हैं, वैसे ही मैं भी कुछ कमा लाया करूँ। अब तो मुझसे यों हाथपर हाथ धरे बैठा नहीं रहा जाता। केवल पिताजीके परिश्रमसे पैदा किये हुए धनपर मौज उड़ाते रहना अच्छा नहीं लगता। इसलिये मैं तो अभी उनके पास जाता और विदेश जानेकी आज्ञा माँगता हूँ। जो धन उपार्जन करनेके लिये देश—विदेश नहीं घुमता और केवल आलस्य तथा आमोदमें जीवन व्यतीत करता रहता है, वह न केवल मूर्ख, बल्कि घोर पापी है। दूसरेकी कमाई पर, चाहे वह बापकी ही क्यों न हो, जीवन बिता देना बड़ा भारी कायरपन है।"

पतिके ऐसे विचार सुनकर सुरसुन्दरी सोचमें पड़ गयी। उसने सोचा,—"इस बरसातके मौसिममें यह विदेश जानेकी बात कैसी? इस ऋतुमें तो उलटे सभी विदेशी परदेशसे स्वदेशमें चले आते और चार महिने फिर कहीं आने-जानेका नाम नहीं लेते।" इसी विचारसे उसके जीमें आया, कि अभी कह दूँ, कि चौमासे-भर कहीं जानेका नाम नहीं लो; परन्तु फिर पतिकी इच्छामें बाधा डालना अच्छा काम न समझ कर उसने चुप्पी साध ली और चित्तमें धैर्य धारण कर लिया।

वहाँसे उठकर अमरकुमार अपने पिताके पास आया और अपने पितापर भी अपनी इच्छा प्रकट की। सुनते ही बेचारे

बूढ़े बापका दिल दहल गया, बुढ़ापेमें पुत्रको अपनी आँखोंके सामनेसे दूर जाने देनेको वह किसी प्रकार राज़ी नहीं था। उसने झटपट कहा'—"पुत्र! तेरे घरमें रुपये-पैसेकी क्या कमी है, जो तू परदेश जाना चाहता है? बेटा! इस बुढ़ापेमें तो मैं तुझे एक दिनके लिये भी अपने कलेजेसे अलग नहीं करना चाहता।"

यह सुन, अमरकुमारने कहा,—"पिताजी! जो आदमी केवल अपने बापकी कमाई पर हीं अकड़ता फिरता है, उसके जीवनको भी धिक्कार है। इसी लिये मैं कुछ स्वयं हाथ-पैर हिलाकर कमाना चाहता हूँ। साथ ही परदेशमें घुमने-फिरने से देश-देशकी रीति-भाँति और नये-नये इल्मोहुनर सीखनेमें आते हैं। विदेशोंकी सैर करनेसे मनुष्यके ज्ञानकी खूब वृद्धि होती है और वह हर तरहके लोगोंके चालचलन, रङ्ग—ढङ्ग और तौर—तरीक़ेसे परिचित हो जाता है। देशाटनमें एक नहीं, अनेक गुण हैं।"

परन्तु उस पुत्र-वत्सल पिताके मनमें यह बात किसी तरह धँसती ही नहीं थी। वह किसी तरह अपने पुत्रको एक दिनके लिये भी आँखोंकी ओट करनेको तैयार नहीं होता था। जब अमरकुमारने इस प्रकार अपने पिताको हठ पकड़ते देखा, तब उदास मुँह बनाये हुए कहा,—"पिताजी! यदि आप मुझे परदेश न जाने देंगे, तो मैं आजसे ही खाना—पीना छोड़ दूँगा।"

यह सुन, बेचारा बूढ़ा सेठ और भी घबरा उठा और आँखोंमें आँसू भरे हुए उसको समझाने बुझाने लगा; किन्तु अमर कुमार भी अपनी हठपर अड़ा ही रहा। तब लाचार सेठने उसे आज्ञा देदी; पर इतना अवश्य स्वीकार करवा लिया, कि बरसातमें घर न छोड़ना—बरसातके बाद, जहाँ जीचाहे, चले जाना।"

पाचवाँ परिच्छेद

बिछोह ।

रात्रिका समय है। पृथ्वीपर निशा-देवीका अटल राज्य छाया हुआ है। पशु, पक्षी, मनुष्य सभी निद्रादेवीकी शान्ति देनेवाली गोदमें पड़े मस्त हैं। हाँ, उन लोगोंको इस समय भी चैन नहीं है, जिन्हें किसी चिन्ताने सता रखा है-चाहे वह किसी दिन अपनेसे बन पड़नेवाली भूलकी याद हो, किसी आनेवाली विपद्की आशङ्का हो, मिलनका आनन्द हो या भावी वियोगकी कल्पना हो। साथही जुआरी, विषयी और पहरेदारोंकी आँखोंमें भी नींद नहीं है। रह रहकर रात्रिमें विचरण करनेवाले पक्षियों और अल्प निद्रावाले कुत्तोंकी आवाज़ भी कभी-कभी सुनाई देती है। ऐसेही समयमें अपने शयनागारमें बैठा हुआ अमरकुमार अपनी प्यारी सहधर्मिणी सुरसुन्दरीके सङ्ग बातें कर रहा है दोनोंहीके चेहरेपर चिन्ताकी छाप पड़ी है।

थोड़ी देर बाद सुरसुन्दरी बोली,—"स्वामी! तुम परदेश चले जाओगे, तो मैं यहाँ अकेली कैसे रहूँगी! क्या तुम नहीं जानते, कि जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसेई नाथ! पुरुष

पिनु नारी ।' इसलिये यदि तुम किसी तरह गये बिना नहीं मानोगे, तो मुझे भी अपने साथ लेते चलो। नारीका धर्म सदा छायाकी भाँति अपने पतिके सङ्ग-सङ्ग फिरनाही है। इस लिये तुम्हारे चले जाने पर मैं अकेली कभी जीती न बचूँगी।"

उस समय अमरकुमारका मन उड़ा हुआ था। वह न जाने क्या सोच रहा था। उसे अपनी ओर ध्यान देते न देख-कर सुरसुन्दरी फिर कहने लगी, "प्राणनाथ! तुम्हारे चले जानेपर मेरे दिन कटने पहाड़ हो जायेंगे। क्या तुम नहीं जानते, कि स्वामीसे बिछुड़ी हुई स्त्रीको लोग झटपट कलङ्क लगादेते हैं। इसी लिये पुराने लोगोंने कहा है, कि कभी अपनी स्त्रीको छोड़कर परदेश नहीं जाना चाहिये। शास्त्रोंमें कहा है, कि शय्या, आसन, भोजन, द्रव्य, राज्य, रमणी और गृह इन सात वस्तुओंको अकेला छोड़ देनेसे दूसरे इनपर अधिकार कर लेते हैं। अतएव, मैं तो अवश्यही तुम्हारे साथ चलूँगी।"

अब तो अमरकुमारसे नाहीं करते न बनी और उसने सुर-सुन्दरीको सङ्ग ले जाना स्वीकार कर लिया। एक दिन शुभ मुहूर्त और शुभ घड़ी देखकर अमरकुमारने अपनी स्त्रीको साथ ले, जहाज़पर सवार हो, परदेशकी यात्रा कर दी।

जाते समय उसकी माता धनवतीने बड़े प्यारसे उसका सूँघते हुए, स्नेह-सने स्वरसे कहा,—"बेटा! परदेशमें सावधानीके साथ रहना होता है, नहीं तो पद—पद पर

ठोकरें खानी पड़ती हैं। इसलिये तुम सदैव अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखना; देश काल-पात्र देखकर आचरण करना; प्रतिदिन बड़े तड़के सोकर उठा करना; जो अपनेसे युद्ध करने आये उससे खूब डटकर संग्राम करना; कभी सन्तोषको हाथसे न जाने देना; बहुत बक-बक न करना और मौक़ेपर चुप भी न रहना; सबसे मिल-जुलकर अपना काम बनाना; सदा सबको सन्तुष्ट करने और उनका मन अपनी मुट्ठी में कर लेनेकी चेष्टा किया करना।"

अपनी माताकी यह शिक्षा हृदयमें धारण किये हुए अमरकुमारने उनके चरणोंमें प्रणाम कर प्रस्थान किया।

यथा समय जहाज़ बन्दरगाहसे रवाना हुआ। बेचारी सुरसुन्दरीने आजतक कभी जहाज़ पर सवार होकर समुद्रका सफ़र नहीं किया था, इसलिये उसे जितना ही कौतूहल हो रहा था, उतना ही भय भी मालूम होता था। समुद्रके ज्वार भाठेके कारण कभी जलकी ऊँची—ऊँची तरङ्गें और कभी शान्त प्रवाह देखकर उसके चित्तमें बड़ा अद्भुत कौतूहल हो रहा था।

महीनोंके सफ़रके बाद जहाज़ एक बन्दरमें आ लगा। इस देशका नाम सिंहल द्वीप था। यहाँ पर खाने-पीनेकी सामग्रियोंका संग्रह करनेके अभिप्रायसे थोड़ी देरके लिये जहाज़को रोक रखनेका विचार हुआ। तदनुसार लङ्गर डाला गया। परन्तु इसी समय उस जहाज़के कुछ माँझियों और मल्लाहोंने

आकर कहा,—जितनी जल्दी हो सके, यहाँसे भाग जाना चाहिये; क्योंकि अभी-अभी हम लोगोंने सुना है, कि इस जगह कोई यक्ष रहता है, जो रातके समय यहाँ आकर मनुष्योंको मार डालता और उनको साफ़ निगल जाता है। इसलिये हमारी तो यही सलाह है, कि यहाँसे शीघ्र लङ्गर उठा लेना चाहिये। परन्तु सब लोग इस बातपर मचल गये, कि यदि ऐसी बात है, तो यहाँसे भागना ठीक नहीं; क्योंकि हम लोग कौतूहल और विचित्रता देखनेके ही लिये तो घरसे निकले हैं; फिर क्या भय है ? देखा जायगा, कि वह यक्ष कौनसा और कैसा है ?

यह सलाह पक्की होतेही जहाज़का लङ्गर पड़ा और सबलोग नीचे उतर कर खाने—पीनेकी तैयारी करने लगे। कोई ईंधन-लकड़ी लानेके बहाने इधर-उधरके तमाशे देखते हुए चले। अमरकुमार भी सुरसुन्दरीको साथ ले इधर—उधर घूमने फिरने लगा।

इसी तरह घुमते-फिरते सारा दिन निकल गया। सन्ध्याकी छाया सारे संसार पर छा गयी। उस समय किनारे परके वृक्षोंकी नीली छाया समुद्रके नीले जलमें पड़कर बड़ा ही विचित्र छटा दिखा रही थी। जङ्गली फूलोंकी मीठी महकसे हवा बड़ी ही खुशबूदार हो रही थी। योंही घुमते-फिरते हुए बहुत थक जानेके कारण सुरसुन्दरी एक जगह बैठ गयी और अमरकुमारको भी वहीं बैठनेके लिये कहा। इसके बाद वह अमरकुमारकी ही गोदमें सिर रखकर ज्योंही लेटी, त्योंही उसे बड़े ज़ोर की नींद आ गयी।

इसी समय सुरसुन्दरीके दुर्भाग्यसे अमर कुमारको बहुत दिनोंकी एक भूली-भुलायी बात याद आ गयी। एक दिन सुरसुन्दरी इसी तरह पाठशालामें सो गयी थी और उसके आँचलमें बँधी हुई सात कौड़ियाँ अमरकुमारने खोल कर निकाल ली थीं। उस समय सुरसुन्दरीने अमरकुमारको कितनी फटकार बतलायी थी और कहा था, कि इन सात कौड़ियोंसे तो मैं राज्य ख़रीद लेती। यह बात याद आते ही अमरकुमारने सोचा, कि बस आज ही इसकी परीक्षा लेनी चाहिये और देखना चाहिये, कि यह कैसे सात कौड़ियोंसे राज्य ख़रीदती है? ऐसा विचार कर उसने सात कौड़ियाँ ले कर सुरसुन्दरीके आँचलमें बाँध दीं और एक पत्तेपर यही लिख कर वहीं रख दिया, कि इन कौड़ियोंकी बदौलत तुम्हें राज्य मिल जायेगा।

इसके बाद वह वहाँसे चल पड़ा। थोड़ी दूर जाते-जाते उसने सोचा,—"ओह! यह मैंने क्या कर डाला? उसे अकेले छोड़ आना तो अच्छा नहीं हुआ। न मालूम उसका क्या हाल होगा? बेचारी अकेली इस बियाबान जङ्गलमें कैसे क्या करेगी! वह यातो प्राण दे देगी या मुझे ख़ूब भरपेट गालियाँ देती हुई किसी ओर चली जायगी। अथवा हो सकता है, कि उसके सोकर उठनेके पहले ही वह दुष्ट यक्ष उसे मारकर खा जाये। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि वह बड़ी सुन्दरी, लावण्यमयी और गुणवती है; पर ये सब गुण उस यक्षका

मन थोड़े ही फेर सकेंगे ? मेरी वह परम सुकुमारी स्त्री उस पापी यक्षका शिकार बने बिना न रहेगी। अरे, तो क्या मेरा-उसका इतना ही संयोग था ? ओह ! कहाँ तो बेचारे राजाने इतना मान बढ़ाया, कि मुझ बनियेके बेटेको अपनी इकलौती लड़की ब्याह दी और कहाँ मैं उस बेचारीके साथ ऐसा व्यवहार किया ? यह तो अच्छा नहीं हुआ। लोग कहते हैं, नीति भी कहती है, कि लाख आफ़तें आयें, तो भी अपनी विवाहिता नारीको नहीं त्यागना चाहिये। फिर यह मैंने कैसा घोर नीचकर्म किया। नहीं मैं अभी पीछे लौटकर उसे जगाऊँ और अपने साथ ले चलूँगा। उसकी बातका जवाब कभी और दिया जायेगा। महज़ उसकी परीक्षा लेनेके लिये उसे छोड़ जाना अच्छा नहीं।"

यही सोचता हुआ वह पीछे लौट चला। इतनेमें उसे फिर यह ख़याल आया, कि अगर वह जगकर, मुझे पास न देख और मेरी वह चिट्ठी पढ़कर मुझे इधर-उधर ढूढ़ रही होगी, तो मैं एकाएक उसके सामने पहुँचकर उसे क्या कैफ़ियत दूँगा ? थोड़ी देर इसी सोचमें पड़े रहनेके बाद उसने आप-ही-आप कहा,—"ओह ! औरतको ठगना भी कोई बड़ी बात है ? मैं इतना ही कह दूँगा, कि यह चाल मैंने महज़ तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये चली थी। बस, अब देर करनेका कोई काम नहीं है। काफ़ी देर हो चुकी। अब चलकर उसे भी साथ ले आना चाहिये।"

यही सोचकर वह धीरे—धीरे वहाँ आ पहुँचा, जहाँ सुरसुन्दरीको सोती हुई छोड़ गया था। वहाँ आकर उसने देखा, कि अभीतक उसकी नींद नहीं टूटी है। यह देखकर वह फिर सोचने लगा,—"तो क्या मैं इसे जगाऊँ? क्या इसके इसी तरह पड़े रहनेमें मुझे कोई लाभ है; या इसके जग पड़नेसे कोई हानि होगी? क्या करूँ, क्या नहीं, कुछ समझमें नहीं आता।"

यही सब सोचते-सोचते अमरकुमारका मन एक बार फिर बदला। उसने सोचा,—"इसने बड़ी डींग मारी थी। अबके यही दिखला देना चाहिये, कि पुरुषोंके बिना नारियाँ कुछ नहीं कर सकतीं। बस, यही काम इस समय करने लायक है। अब तो चाहे इसका जो हाल हो; पर मैं तो यहाँसे चलता हूँ।"

यह कह वह चला गया। सुरसुन्दरी पहलेकी ही तरह नींदमें बेसुध पड़ी रही।
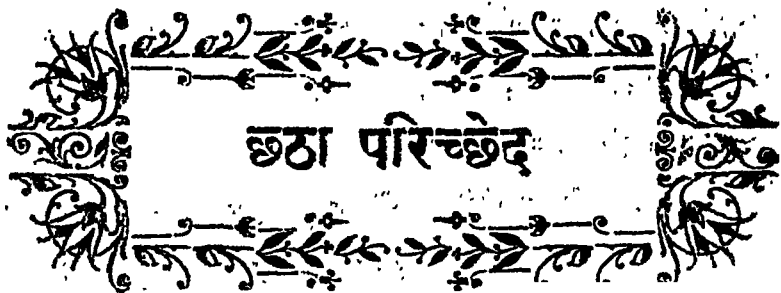
छठा परिच्छेद

खोज-ढूँढ़।

सवेरा हो गया है। पूरब ओर आकाशमें ललाई छा रही है। चिड़ियाँ चहक रही हैं। कलियाँ चटक रही हैं। लोग धीरे-धीरे सेजको मोह-माया छोड़कर उठते जाते और सुबहके कामकाज करनेमें लग रहे हैं। सारी रातमें बेसुध सोयी हुई सुरसुन्दरीने भी इसी समय एकाएक करवट बदल कर आँखें खोल दी। आँखें खोलते ही उसने देखा, कि उसके स्वामी तो न मालूम कहाँ चले गये! उन्हें पास न देख वह बेतरह घबरायी; पर तुरत ही धैर्य धारण कर उसने सोचा,—"यहाँकी प्राकृतिक शोभा निराली है। इसलिये वे इधर-उधर घुम कर यही शोभा देख रहे होंगे।"

अहा! बेचारी सीधी-सादी नारीको क्या मालूम, कि अभी-अभी उसके स्वामी उसके साथ कितनी बड़ी निठुराई कर गये! ख़ैर, वह धीरे-धीरे उठी और चारों ओर घुम-घुमकर स्वामीको ढूढ़ने लगी; पर वे कहीं नहीं दिखाई दिये।

चारों ओर खोज-ढूंढ़ करनेके बाद वह निराश होकर फिर वहीं लौट आयी जहाँ सोयी हुई थी। वहाँ आते ही मूर्च्छासी आ गयी और वह बेहोश होकर धड़ामसे धरती पर गिर पड़ी।

वह बड़ी देरतक इसी तरह बेहोश पड़ी रही, इसके बाद मन्द-मन्द समुद्री हवाके लगनेसे जब माथेमें कुछ ठण्डक पहुँची, तब वह धीरे-धीरे होशमें आ, लज्जासे घुँघटमें मुँह छिपाये, चुपचाप वहीं बैठी हुई इस आकस्मिक विपदपर अपने भाग्यको कोस रही थी। इसी समय उसकी दृष्टि एकाएक अपने आँचलमें बँधी हुई गाँठपर पड़ी। उसने उसे खोलकर देखा, तो सात कौड़ियाँ बँधी पायीं। यह देख, वह बड़े आश्चर्यमें पड़कर सोचने लगी, कि इसका मतलब क्या है? एकाएक उसे पास ही पड़ा हुआ वह पत्र भी मिलगया, जिसमें लिखा था, कि इसीकी बदौलत तुम्हें राज्य मिल जायेगा। अब तो उसे पाठशालाकी वह घटना याद आ गयी और वह समझ गयी, कि उसी बातको मनमें रखकर मेरे स्वामीने मुझे इस तरह निर्जन वनमें छोड़ दिया है। यह बात मनमें आते ही उसने आप ही आप कहना शुरू किया,—"हाय! प्राणपति! तुमने आज मेरे साथ कैसी कठोरता कर डाली? मुझे क्या मालूम था। कि लड़कपनमें दिल्लगीमें कही हुई बातको तुम इस तरह अपने मनमें छिपाये रहोगे और मुझे सुनसान जङ्गलमें लाकर अकेली छोड़ जाओगे? अब मैं कैसे रहूँ? कहाँ रहूँ? किसके पास जाऊं? कौन मेरी सहयता करेगा? मेरा क्या

हाल होगा ? अरे इससे तो अच्छा यही होता, कि तुम मुझे ज़हर देकर मार डालते, जिससे मैं संसारके सारे झगड़े-झंझटोंसे उद्धार पा जाती। ओह! तुमने बड़ी दग़ा दी! आख़िर बनियेका बेटा अपने बाप तकको भी छकाता है। यह कहावत आज सच उतरी। ओह! मेरी यह बुद्धि कहाँ गयी थी, जब मैंने तुम्हारे साथ ब्याह किये जानेके प्रस्तावपर हामी भर दी थी। ओह! इस समय मेरे मनमें तुम्हारे ऊपर कितना क्रोध उत्पन्न हो रहा है, वह मैं क्या बतलाऊँ? तुमने भी तो क्रोधमें-ही आकर इस तरह पुरानी बात याद करके मुझसे बदला लिया है! यह क्रोध बड़ा भारी शत्रु है। यह मनुष्यकी सारी बुद्धि, विवेक, विनय पुण्य, यश और कीर्त्तिको चौपट कर देता है। ख़ैर, अब तो जैसी विपद् सिरपर आ पड़ी है, उसे सहन करना ही होगा और किसी तरह अपने शील और धर्मकी रक्षा करनी ही होगी।"

यही सोचकर वह चुप हो रही और एक बार फिर चारों ओर अपने स्वामीकी खोज-ढूँढ़ करने लगी; पर उसके स्वामीका वहाँ कहाँ पता था? अमरकुमार तो उसे छोड़ कर जहाज़ पर सवार हो, किसी और ही देशको रवाना हो गया था।

सातवाँ परिच्छेद

सती-सङ्कट।

सारा दिन योंही खोज-ढूढ़में बीत गया। सन्ध्या हुई। सूर्य अस्ताचलको जा पहुँचे। वनमें घोर अन्धकारका रज्य छा गया। जन-मानव शून्य जङ्गलकी भयङ्करता और भी बढ़ गयी। बस, सिवा समुद्रकी तरंगोंकी हरहराहट और हवाके झोंकसे किनारेके वृक्षोंकी मर्मर-ध्वनिके और कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था। सारी प्रकृति शान्ति और सन्नाटेके भीतर छिप गयी।

थोड़ी देर और बीतनेपर रातका अँधेरा और भी गहरा हो गया। अँधियाला पाख होनेके कारण वह अन्धकार और भी घना तथा भयङ्कर हो गया था। उस अन्धेरेमें अपना हाथ भी पसारे नहीं सूझता था। इसी घोर अंधियारीमें सुरसुन्दरीको एक बड़ी ही विचित्र तथा लम्बे डील डौलवाली मूर्त्ति आती अपनी ओर दिखाई दी। ज्यों-ज्यों वह मूर्त्ति पास आती थी,

त्यों-त्यों उसके मुँहमें एक प्रकारकी विचित्र ध्वनि स्पष्ट सुनाई दे रही थी। यह देख सुरसुन्दरीने आँखें मुँद लीं।

धीरे—धीरे वह मूर्त्ति वहाँ आ पहुँची, जहाँ सुरसुन्दरी चुपचाप बैठी हुई परमेष्ठीके ध्यानमें लीन हो रही थी। एकाएक उस मूर्त्तिके मुँहसे निकलती हुई स्फुट-ध्वनिको सुनकर सुर-सुन्दरीका ध्यान टूट गया और उसने देखा, कि अब तो वह मूर्त्ति बिलकुल ही पास आ गयी है। परन्तु इससे वह ज़रा भी न डरी और पहलेकी ही भाँति फिर आँख मूँदकर ध्यान करने लगी।

वह मूर्त्ति उसी यक्षकी थी, जिसके विषयमें इधरके लोगोंमें तरह-तरहकी बातें सुनी जाती थीं। वह बड़ा ही क्रूर और मनुष्य-जातिका कट्टर शत्रु था। परन्तु सुरसुन्दरीका स्वर्गीय लावण्य देख और उसके नवकार मन्त्रकी आराधनाके प्रभावसे कुछ भी बुराई करनेमें असमर्थ होकर वह यक्ष उसपर किसी प्रकारका अत्याचार न कर सका। उलटे वह उसपर दया दिखलानेको तैयार हो गया। उसने सुरसुन्दरीके पास आकर उसका सारा हाल पूछकर मालूम कर लिया और उसे अपनी लड़कीकी तरह अपने घर रखना स्वीकार करके उसको अपने घर ले आया। यहाँ वनके सुन्दर रसीले फलोंको खा और झरनेका ठंडा पानी पीकर सुरसुन्दरी अपना समय बिताने लगी।

अपने धर्म-पिताकी आज्ञाओंका पालन करतीं, बड़े दृढ़तासे अपने शील और पतिव्रतकी रक्षा करती और रात-दिन परमेष्ठी-मन्त्रका ध्यान करती हुई वह बड़े सुखसे दिन काटने लगी।

कुछ समय इसी तरह बीतनेके बाद एक दिन उधर ही से जाते हुए कुछ जहाज़ोंने वहीं लङ्गर डाला। उन जहाज़ोंके मालिक सेठने सुरसुन्दरीका यह अलौकिक रूप-लावण्य देखकर यही सोचा, कि यह इस वनकी देवी है। यही सोचकर वह उसके सामने हाथ ज़ोड़े खड़ा हो गया और पूछने लगा, कि आप देवी हैं या मानवी-सो कृपाकर बतलाइये। यह सुन सुरसुन्दरीने कहा,—"मैं कोई देवी नहीं, बल्कि आपकी ही तरह मनुष्य हूँ।" इसके बाद उसने शुरूसे लेकर आजतककी अपनी सारी कथा उस सेठको कह सुनायी।

सब सुनकर सेठने पूछा—"तो क्या तुम्हारा इरादा सारा जीवन इसी तरह अङ्गलमें बितानेका है।"

सुरसुन्दरी बोली,—"नहीं—मैं जीवन-भर इसी तरह इस एकान्त जङ्गलमें न रह सकूँगी।"

सेठने कहा,—'तब यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरे साथ चल सकती हो।"

सुरसुन्दरीने कहा,—मैं अपने स्वामीके सिवा सभी पुरुषोंको अपना बाप या भाई समझती हूँ। इसलिये यदि आप इस बातको स्वीकार करलें, कि यदि मेरे पिता या स्वामीका कोई जहाज़ या आदमी रास्ते मिल जायेगा, तो आप मुझे उसके साथ जाने देंगे, तब तो मैं आपके साथ चल सकती हूँ। अन्यथा नहीं।"

सेठने सुरसुन्दरीकी बात सहर्ष स्वीकार कर ली और उसे अपने साथ लेकर तुरत ही उस द्वीपसे रवाना हो गया।

क्रमशः जाते-जाते कई दिन रास्तेमें ही बीत गये। युवती स्त्री देखकर बड़े-बड़े मुनियोंके भी मन डोल जाते हैं। यह वही आग है, जिसमें पतङ्ग बनकर न कूदे, ऐसा कोई विरला ही धर्मात्मा संसारमें दिखाई देता है। इसी लिये बराबर सुरसुन्दरीका वह अलौकिक सौन्दर्य देखते-देखते सेठका चित्त भी चञ्चल हो गया और वह एक दिन लाज-शर्म छोड़ कर राजकुमारीके पास एकान्तमें आकर बोला,—"प्यारी ! यदि तुम मेरी पत्नी बन जाओ, तो बड़ी अच्छी बात हो। मैं तुम्हारा रूप देखकर तुमपर जी-जानसे मोहित हो गया हूँ। इसलिये मैं तुमसे साफ़ कहे देता हूँ, कि या तो चुपचाप अपनी इच्छासे मेरे कहे अनुसार काम करो, नहीं तो मैं तुम्हें ज़बरदस्ती अपने वशमें लाये बिना न मानूँगा।"

बेचारी सुरसुन्दरी तो उसकी ये पाप-भरी बातें सुनते ही सन्नाटेमें आ गयी। उसने कभी इस तरहकी बात उस सेठसे सुननेकी आशा नहीं की थी। उसकी बातें सुनते-सुनते सुरसुन्दरीके सारे शरीरमें आगसी लग गयी। उसने क्रोधसे काँपते हुए कहा,—"रे दुष्ट पापी कहींका ! तू तो मुझे अपनी लड़की बनाकर यहाँ लाया था और अब ऐसी बातें कर रहा है ? मैं भी आजतक तुझे अपने धर्मपिताके सिवा और कुछ नहीं जानती थी; पर आज समझी, कि तू छिपा हुआ पापी है। नीच कहींका ! अपनी लड़कीसे इस तरहकी बातें करते तुझे शर्म नहीं आयी ? जा, अभी मेरे सामनेसे दूर हो जा।"

सेठने कहा,—"मैं तो तुझे अपनी स्त्री ही बनानेके लिये ले आया था। भला तू मेरी पुत्री कैसे हो सकती है! वह तो महज़ तुझे धोखा देनेके लिये मैंने कहा था। अपना मतलब बनानेके लिये आदमी हर तरहकी बातें बनाया ही करता है। अब उस बातको छेड़नेसे क्या काम है? अब तो तेरा कल्याण इसीमें है, कि तू मेरा कहा मान ले।"

सुरसुन्दरीने कहा,—"रे नीच बनियेका बेटा! इस तरह परायी नारीपर मन चलाना बड़ा भारी पाप है। आजतक परायी बहू बेटियोंपर बुरी निगाह डालकर न तो कोई सुखी हो सका है और न होगा। मैं देखती हूँ, कि तेरी भी अब बुरी घड़ी आ गयी है, इसीलिये तू ऐसी नीयत कर रहा है, पर ठीक जान ले, तुझे सिवा मुँहकी खानेके और कुछ हाथ न आयेगा।"

यह सुन, सेठने हँसकर कहा,—"तब तो देखता हूँ, कि मुझे लाचार तेरे ऊपर बलात्कार ही करना पड़ेगा।"

यह सुनते ही सुरसुन्दरी घबरा उठी। वह मन-ही-मन सोचने लगी,—"यदि कहीं इसने सचमुच बलात्कार करनेपर कमर बाँधी, तो फिर बड़ी मुश्किल होगी। इस समय मेरे पास ऐसी कोई चीज़ नहीं, जिससे मैं इस पापीसे अपनेको बचा सकूँ। इस समय बस एक ही उपाय है, जिससे मैं अपनेको इस धर्म-नाशके भयसे बचा सकती हूँ! वह उपाय यही है, कि मैं समुद्रमें कूदकर प्राण दे दूँ। धर्म देनेसे तो प्राण देना ही अच्छा है।"

यही सोचकर सुरसुन्दरी पलक मारते-न-मारते समुद्रमें कूद पड़ी। "हैं! हैं! यह क्या? यह क्या?" कहता हुआ सेठ उसे पकड़नेके लिये लपका; पर तब तक तो सुरसुन्दरी समुद्रमें कूद गयी। यह देख, सेठने बड़े ज़ोरसे हो-हल्ला मचाया और माझी-मल्लाहोंको समुद्रमें कुदाकर उसे निकाल लानेका हुक्म दिया। इसी समय समुद्रमें तूफ़ान जारी हो गया। आस्मा-नमें बादल घिर जानेसे अँधेरा छा गया और बड़े ज़ोरकी आँधी चलने लगी। इस लिये तुरत ही सुरसुन्दरी पानीकी धारामें बहती हुई किधर चली गयी, यह किसीको मालूम नहीं हो सका। इतनेमें दूसरा झोंका आँधी ऐसा आया, कि वह जहाज़ डगमग करने लगा और जहाज़के किनारे खड़ा हुआ वह पापी सेठ भी एकाएक समुद्रमें गिरकर डूब गया। मानों उसने सतीपर बुरी दृष्टि करनेका फल हाथोंहाथ पालिया। सच है, घोर पापका फल इसी जन्ममें मिल जाता है।
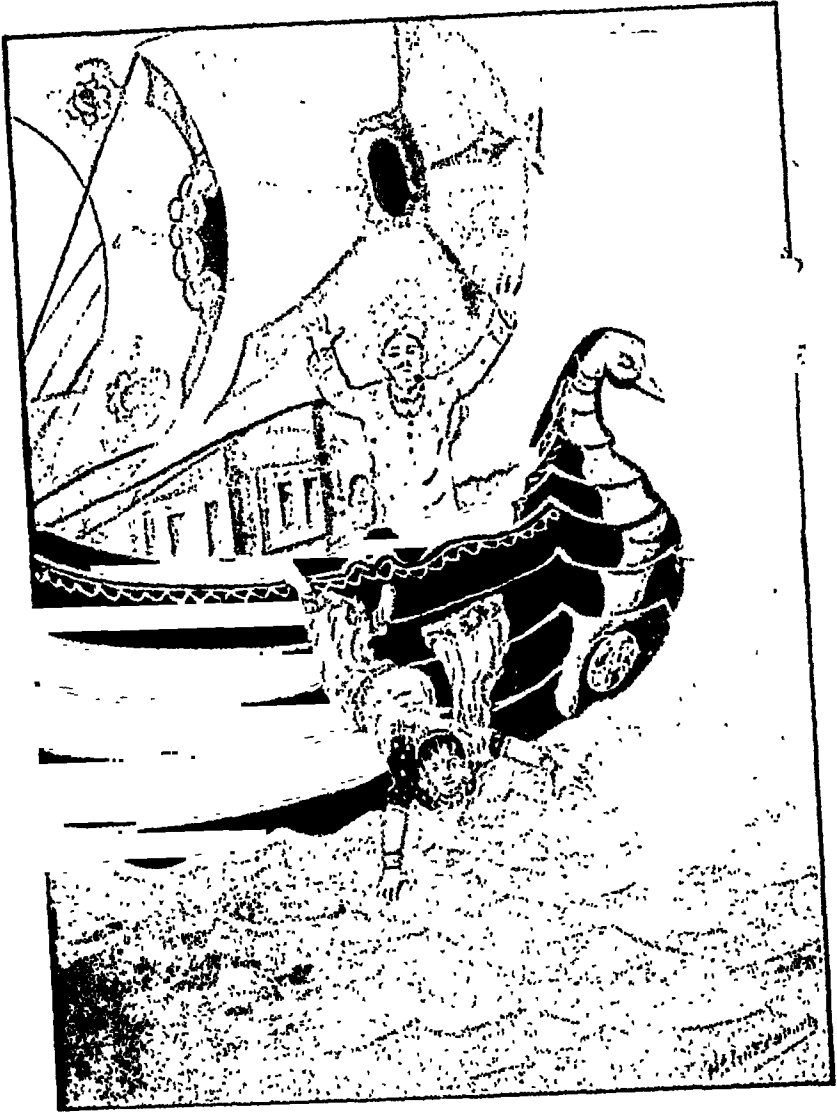
"हैं ! हैं ! यह क्या ? यह क्या ?" कहता हुआ सेठ उसे पकड़-नेके लिये लपका ; पर तब तक तो सुरसुन्दरी समुद्रमें कूद गयी।

(पृष्ठ ३८)

आठवाँ परिच्छेद।

सङ्कटपर सङ्कट।

भाग्य बड़ा ही प्रबल होता है। पूर्व जन्मोंके कर्म अपना फल लाये बिना कभी नहीं रहते। यदि पूर्व जन्मके कर्म अच्छे हुए तो इस जन्ममें सुख होता है और लाख दुःख-सङ्कटोंसे भी आदमी उद्धार पा जाता है। इसके विपरीत यदि बुरे कर्म हुए तो इस जन्ममें पद-पदपर विपद ही देखनेमें आती है। काम बनता हुआ भी बिगड़ जाता है। इतिहास-पुराणोंमें इस तरहके उदाहरणोंकी कोई कमी नहीं है। वर्त्तमान घटनाके सम्बन्धमें भी यही बात हुई।

सुरसुन्दरी समुद्रमें कूद पड़ी और उसी समय बड़े ज़ोरका अन्धड़-पानी आया; पर इस भयंकर तूफ़ानमें पड़कर भी वह मरने नहीं पायी। उसी समय एक टूटे हुए जहाज़का तख्ता बहता हुआ उसके हाथ आ लगा, जिसे पकड़ कर वह किसी

तरह बहती हुई अपनी जान बचा सकी । उसी तख्तेके सहारे वह बहुत दूर निकल गयी और एक बन्दरगाहके पास आ-पहुँची । लगातार जलके साथ युद्ध करते-करते वह बेहोश हो गयी थी । उस समय बन्दरगाहपर जितने लोग मौजूद थे, उन्होंने एक तख्तेपर एक नौजवान स्त्रीको बहते हुए आते देख-कर उसे पानीसे बाहर निकाला और उसे शहरके अन्दर ले जाना चाहा ।

इसी समय एक अद्भुत घटना हो गयी । उस नगरके राजा का मतवाला हाथी साँकल तुड़ाकर भागा हुआ ठीक उसी समय वहाँ आ पहुँचा और लगा लगोंको खदेड़ने । इस हाथीने शहरके अन्दर बड़ा उत्पात मचा रखा था । इसलिये लोग बेतरह डरेहुए थे । इसीसे उसे देखते ही सब लोग सुरसुन्दरी की बेहोश देहको वहीं पटककर इधर-उधर भाग गये । उनके भागते ही उस हाथीने बेहोश सुरसुन्दरीको अपनी सूँढ़से उठा लिया और उसे इस ज़ोरसे घुमाकर फेंका, कि वह समुद्रमें जाते हुए एक जहाज़ पर जा गिरी ।

उस जहाज़ पर इस तरह ज़ोरसे गिरनेके कारण और साथ ही ठंडी-ठंडी समुद्रकी हवाके झोंके लगनेसे सुरसुन्दरीकी बेहोशी एकाएक दूर हो गयी और वह घबराकर उठ बैठी ।

थोड़ी देर बाद उस जहाज़का मालिक, जो एक बड़ा भारी व्यापारी था, उसके पास आया और उससे सारा हाल चाल पूछने लगा । सुरसुन्दरीने उसे सब कुछ ज्योंका त्यों कह

सुनाया। सुनते—सुनते उसका वह अलौकिक सौन्दर्य देख-कर वह व्यापारी भी उसपर मोहित हो गया। परन्तु उस सेठकी दुर्गतिकी बात सोचकर उसने अपने मनकी लालसाको मनमें ही दबा दिया; पर इसके साथ ही उसने एक और पाप—भरी चाल सोची, उसने सोचा, कि यदि इस सुन्दर नारीको मैं किसी धनीके हाथ बेंच दूँ, तो मुझे काफ़ी रुपये भी मिल जायें।

यही सोचकर वह दुष्ट चुप्पी साधे रह गया और पासके ही एक बन्दरगाह पर पहुँचकर जहाज़का लङ्गर डलवा दिया। वहाँ पहुँचकर उस पापी व्यापारीने उसे एक वेश्याके हाथ बेंच दिया। उस वेश्याने उसे ख़ूब मुँहमाँगा दाम दिया। वास्त-वमें सुरसुन्दरीका ऐसा ही रूप था, कि वह वेश्या उसे चाहे जितना दाम दे सकती थी।

बेचारी सुरन्दरीको क्या मालूम, कि वह दुष्ट उसे किसके हवाले कर गया। वह तो समझी, कि यह स्त्री मेरे ऊपर दया करके मुझे अपने साथ लिये जा रही है।

दो—चार दिनतक तो वह वेश्या चुपचाप रही। इसकेबाद उसने अपना असली रूप दिखलाना शुरू किया। जब सुरसु-न्दरी यह बात अच्छी तरह समझ गयी, कि यह तो वेश्या है और मुझे भी पापके रास्तेपर ले जाना चाहती है, तब वह तुर-तही वहाँसे भाग जानेका मौक़ा ढूँढ़ने लगी। आख़िर उसे मौक़ा हाथ लग ही गया और वह एक दिन रातको चुपचाप

उस वेश्याके घरसे निकल भागी। भागते-भागते वह एक बड़ी भारी झीलके पास आ पहुँची और इस तरह बार-बार धर्मपर आघात होनेके भयसे उसीमें कूद पड़ी।

उस झीलमें एक बहुत बड़ी मछली रहती थी। वह उसे उसी समय पानीके साथ—साथ निगल गयी। संयोगवश उसी समय धीवरोंने जाल लगाकर उस मछलीको पकड़ा और उसे जलसे बाहर निकालकर उसका पेट फाड़ा। पेट फाड़ते ही उस-मेंसे सुरसुन्दरीकी बेहोश देह बाहर निकल पड़ी। उस समय तक उसके प्राण निकल नहीं गये थे—थोड़ी-बहुत साँस चल रही थी। बहुत कुछ उपचार करके धीवरोंने उसकी बेहोशी दूर की। वह होशमें आयी तो सही; पर उसके लिये फिर एक विकट फन्दा तैयार हो गया।

उसका वह मनलुभावना सुहावना रूप देख, धीवर उसे उस नगरके राजाके पास ले गये। राजाने उससे सारा हाल-चाल मालूम कर, उसे अपने महलोंमें रहनेका हुक्म दे दिया। राजाने भी हाथ-पैर फैलाना चाहा और सुरसुन्दरीके सतीत्वपर दाँत गड़ाया; पर उसकी पटरानीने यह देखकर, कि यदि राजा इस पर रीझ जायेंगे, तो मेरा मान घट जायेगा, उसे चुपचाप मह-लोंसे बाहर निकाल दिया। इस तरह महारानीके ही करते इसबार उसका धर्म बच गया।

महलोंसे निकल कर वह बाहर आयी ही थी, कि अँधेरी रातमें चोरी करनेके इरादेसे निकले हुए कुछ चोरोंने उसे पकड़

लिया। चोरोंके सरदारकी भी नीयत उसका रूप देखकर डिग गयी; पर सुरसुन्दरीने उसे ख़ूब फटकार बतायी और नवकार-मन्त्रके प्रभावसे उस पापी चोर— सरदारकी सारी शक्ति नष्ट कर दी।

चोरोंके पंजेसे निकलकर सुरसुन्दरी घने जङ्गलोंकी ओर चल पड़ी। उस जङ्गलमें एक जगह पानीका सोता देख, वह उसीके पास आ पहुँची और हाथ-मुँह धो किनारे पर थोड़े ही देर बैठने पायी थी, कि उसे एकाएक नींद आ गयी और वह वहीं आलस्यके मारे ज़मीनपर पड़कर सो गयी।

इस तरह बेचारी सुरसुन्दरी बार—बार सङ्कटपर सङ्कट सहती चली गयी, पर उसने कभी अपना धर्म हाथसे नहीं जाने दिया। उसी धर्मने हरबार उसकी सहायताकी और न केवल उसके शील और धर्मको ही, बल्कि उसके प्राणोंको भी बड़ी ख़ूबीसे बचाया। सच ही कहा है, कि—

"जो हठ राखे धर्मकी तेहि राखे करतार।"

नवाँ परिच्छेद।

भाई—बहन।

नीं दमें बेसुध पड़ी हुई सुरसुन्दरीको मरी हुई जान कर आसमानसे एक गरुड़-पक्षी नीचे उतरा और उसे अपनी चोंचसे दबाये हुए आकाशमें उड़ चला। पर वह थोड़ी ही दूर जाते-न-जाते यह बात समझ गया, कि यह तो मरी नहीं, बल्की जीती है। यह बात ध्यानमें आते ही उसने उसे छोड़ दिया। अब तो वह एकदम नीचेकी ओर चली और सम्भव था, कि थोड़ी ही देरमें ज़मीनपर गिरकर मर जाती, कि इतनेमें उधरसे ही कोई विद्याधर अपने विमानपर बैठा हुआ उड़ा जा रहा था, उसीके विमानपर गिर पड़ी। उस के इधर आ निकलनेसे एक बेचारी दुःखिनी अबलाके प्राण बच गये। यह सोचकर वह विद्याधर मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ। जब सुरसुन्दरी होशमें आयी, तब यह सोचकर, कि कहीं यह भी पीछे नीयतकी खुटाई न दिखलाने लगे, उसने आँ-खोंमें आँसू भरे हुए बड़े कातर स्वरसे कहा,—"मुझे यहाँ मत

पर वह थोड़ी ही दूर जाते-न-जाते यह बात समझ गया, कि यह तो मरी नहीं, बलकी जीती है। यह बात ध्यानमें आते ही उसने उसे छोड़ दिया। (पृष्ठ ४४)

रखो—अभी नीचे ज़मीनपर पटक दो। मैं बड़ी ही दुःखिनी हूँ—मैं अब ये प्राण रखना नहीं चाहती।"

यह सुन, उस विद्याधरने उससे अपनी राम-कहानी सुना देनेके लिये कहा और बहुत तरहसे ढाँढ़स बँधाते हुए उसे आत्महत्याका विचार दिलसे दूर कर देनेको कहा। उसकी बातोंसे सुरसुन्दरीको बड़ा धैर्य और साथ-ही उस विद्याधरपर विश्वास भी हुआ। तब उसने अपनी सारी रामकहानी आदिसे अन्ततक कह सुनायी। सुनकर विद्याधरको उसपर बड़ी सहानुभूति उपजी और उसने कहा,—"तुमने इधर बहुत दिनोंतक लगातार दुःख ही दुःख उठाये हैं, इसलिये कुछ दिन आरामसे हमारे यहाँ बिता दो, इसके बाद फिर जैसा उचित जँचे, वैसा करना।"

यह सुन, सुरसुन्दरीने कहा,—"इधर मैं जहाँ—जहाँ गयी, वहाँ—वहाँ विपत्ति भी मेरे पीछे-पीछे चली। इसीलिये अब तो आपके यहाँ जानेके पहले मैं ज़रा नन्दीश्वर-द्वीपकी यात्रा करना चाहती हूँ, जिससे श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की कृपासे, उनके दर्शनोंके पुण्यके प्रभावसे मेरे पूर्व जन्मके सभी पाप नष्ट हो जायें और मैं फिर वैसे सङ्कटमें न पड़ूँ।"

विद्याधरने सुरसुन्दरीकी यह इच्छा पूरी करनी स्वीकारकी और झटपट उसे लिये हुए विमानकी राह नन्दीश्वर-द्वीपमें आ पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने बड़े विधानके साथ श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की पूजा की। इसके बाद वह फिर उसी विद्याधरके

साथ उसी विमानपर सवार होकर उसके निवास-स्थानकी ओर चल पड़ी।

राहमें जाते-जाते उस विद्याधरने कहा,—"देखो, मेरे चार स्त्रियाँ हैं। वे चारों तुमसे बड़ा प्रेम रखेंगी, तुमको बहुत मानेंगी, पर तुम अपने भीतरी भेद उन्हें कदापि न बतलाना और अपने सुख-दुःखकी बात उनसे न कहना; क्योंकि जो बात चार कानोंतक रहती है, वह तो छिपी रहती है; पर जहाँ वह चारसे छः कानोंतक पहुँची, कि उसका सारी दुनियाँमें ढोल पिट जाता है।"

इसी तरह प्रेमालाप करते हुए दोनों उस विद्याधरके नगरमें आ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उसने अपनी स्त्रियोंसे कहा, कि यह मेरी बहन है। मैं इसे अभी इसकी ससुरालसे लिये चला आ रहा हूँ।

यह सुन, उसकी स्त्रियोंने सुरसुन्दरीको बड़े प्रेमसे विमानसे नीचे उतारा और उसकी ख़ूब आवभगत की। थोड़े ही दिनोंमें इन नन्द-भाभियोंमें ख़ूब गहरी प्रीति हो गयी। जब देखो, तभी पाँचों मूर्त्तियाँ एक ही साथ हँसती—खेलती घूमती, फिरती बतलाती और काम धन्धे करती हुई नज़र आती थीं। इसी तरह कुछ दिन बड़ी मौजबहारके साथ कट गये।

एक दिन सुरसुन्दरी ख़ूब सुन्दर शृंगार किये बैठी थी। एक तो वह यों ही परम सुन्दरी थी, दूसरे, आज उसने ख़ूब ही उत्तम शृंगार कर लिया था, इसलिये उसके रूपकी बहारसे चारों

दिशाएँ जगमगा रही थीं। यह देखते ही उस विद्याधरका मन हाथसे निकल गया—वह सो जानेसे उसपर मोहित हो गया। परन्तु उसमें अपने चित्तको रोक रखनेकी पूरी शक्ति थी। उसी शक्तिसे काम लेकर उसने झटपट अपने चित्तका संयम कर लिया और इस बातका सङ्कल्प कर लिया, कि अब इसे यहाँ नहीं रहने दूँगा; क्योंकि अपने मनका ठिकाना नहीं, कि कब कैसा रहेगा।

इसी समय सुरसुन्दरीने उस विद्याधरसे वहाँसे चले जानेकी आज्ञा माँगी। विद्याधरने उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और उसे ठीक उसी तरह खूब दान-दहेज़ देकर विदा किया, जैसे भाई अपनी बहनको विदा करता है; परन्तु सुरसुन्दरीने वे सब चीज़े लौटा दीं—सिर्फ ऐसी कुछ चीज़ें माँग लीं; जो मनुष्य-लोकमें दुर्लभ हैं। इन चीज़ोंका पता पाठकोंको पीछे मालूम होगा।

दसवाँ परिच्छेद

अमरकुमार ।

आइये पाठक ! अब हम आपको यह बतलायें; कि सुरसुन्दरीको उस दिन सोतेमें छोड़कर भाग जानेके बाद अमरकुमार कहाँ गया और उसने क्या-क्या किया ?

समुद्रकी राह अनेक देशोंको सैर करता हुआ अमरकुमार बहुतसा व्यापारी माल लिये, हुए 'वेनातट' नामक नगरमें आ पहुँचा। इतने अरसेमें उसने खूब धन भी उपार्जन किया और जगह-जगहको रीति-भाँति और इलमोहुनर भी सीखे। वेनातट नामक नगरमें पहुँचकर उसने राजाके पास आकर उन्हें बहुतसी चीज़ें नज़रानेमें दीं और उसी नगरमें टिक कर व्यापार करनेकी आज्ञा उनसे प्राप्त की।

वह दरबारसे आज्ञा लेकर ज्योंही बाहर निकला; त्योंही बन्दरगाहके अफ़सरने उसे गिरफ्तार कर लिया। उसपर लूटका माल जहाज़में लादनेका अभियोग लगाया गया। बेचारा निर्दोष ही क़ैद खानेमें भेज दिया गया।

एक तो इधर महीनोंसे उसे योंही सुरसुन्दरी बहुत याद आती

थी, अबके इस विपत्तिमें पड़नेपर तो सुरसुन्दरीने उसका सारा हृदयही घेर लिया। अब तो उसे रह-रहकर यही ख़याल होने लगा, कि मैंने जो बिचारी सुरसुन्दरीको निर्दोषही जंगलमें छोड़ दिया था, उसीका यह फल मुझे भोगना पड़ा है; क्योंकि सतीकी लाञ्छना करनेवालेको कभी सुख नहीं हो सकता।

क़ैद ख़ानेमें पड़े-पड़े बेचारे अमरकुमारकी बड़ी बुरी अवस्था हो गयी। तब उसने क़ैद ख़ानेके पहरेदारोंके सरदारसे चुप चाप निकल भागनेकी सलाह की। उसने कहा,—"यदि तुम मेरे पैरके तलवेमें सवा सेर घी मलते-मलते सुखा दो, तो मैं अवश्यही तुम्हारे छुटकारेका उपाय कर दे सकता हूँ।"

लाचार अमरकुमारने यह बात स्वीकार करली। वह पहरों घी मलता रहा; पर तोभी बहुतसा घी बच रहा। उस समय सरदार नींदका बहाना किये पड़ा था। पर अमरकुमारने उसे सोया हुआ जानकर बाक़ी बचा हुआ घी पी जानेका विचार किया। यही विचार कर ज्योंही उसने घीका बर्तन उठाया, त्योंही सरदारने झट आँखें खोल दीं। उसने कहा,—"तू लड़कपनका चोर मालूम होता है। इतनी दुर्गति उठानेपर भी तेरी लत नहीं छुटी।"

बेचारा अमरकुमार तो बेतरह झेंपा। वह एकदम चुप्पी साधे रहा। उसके मुँहसे बोली निकलनी कठिन हो गयी। उसके चेहरेपर स्याहीसी फिर गयी। वह मन-ही-मन अपनी अतीत और वर्त्तमान अवस्थाका मिलान करने लगा।

उसे इस तरह चुप्पी साधे; चिन्ता करते देखकर सरदारने पूछा, "भाई! सच-सच कहो, तुम कौन हो और क्या सोच रहे हो?"

इसके उत्तरमें अमरकुमारने अपना सारा हाल विस्तार-पूर्वक कह सुनाया। साथही सुरसुन्दरीको उसने किस प्रकार निर्दय-ताके साथ जंगलमें छोड़ दिया था, यह भी कह डाला।

उसका सारा सच्चा हाल सुनकर सरदारके चित्तमें बड़ी दया उपजी। उसने कहा,—"क्या तुम अपनी प्यारी पत्नीसे फिर मिलना चाहते हो?"

अमरकुमारने कहा,—"अहा! यदि यह बात हो, तो फिर क्या कहना है? मैं उसे देखतेही उसके पैरोंपर गिर पड़ूँगा और उससे हाथ जोड़कर अपनी करनीके लिये क्षमा माँगूगा।"

यह सुनतेही सरदार उठकर खड़ा हुआ और बोला,—"अच्छा! तुम घबराओ नहीं। मैं अभी तुम्हें तुम्हारी स्त्रीसे मिला देनेका उद्योग करता हूं।"

यह कह, वह झटपट वहाँसे चल पड़ा। उसे जाते देख, अमरकुमार और भी निराश हो गया। उसने सोचा,—"यह योंही मुझे झाँसा-पट्टी देकर चला गया!"

पर ऐं! यह क्या? कुछही घड़ियोंके बाद अमरकुमारने देखा, कि उसके सामने सुरसुन्दरी खड़ी है। वह तो एकदम अचम्भेमें आ गया। वह समझ न सका, कि यह स्वप्न है या सत्य? उसने मन-ही-मन कहा,—"यह कैसी विचित्र माया है! यहां सुरसुन्दरी किधरसे आ पहुँची? तो क्या उसे यक्ष ने मार नहीं डाला?"

यही सोचते-सोचते अपनी करनीपर पछताते हुए अमर-

कुमारने सुरसुन्दरीके पैरोंपर गिरकर क्षमा माँगनी आरम्भ की ; पर सुरसुन्दरीने झट अपने पैर पीछे हटा लिये और कहा,—"स्वामी! आप मेरे सिर पाप क्यों चढ़ाते हैं? भला कहीं स्वामीको स्त्रीके पैरोंपर गिरना चाहिये?"

इसके बाद तो दोनों पति-पत्नी खूब गले-गले मिलकर अपने वियोगके दिनोंका इतिहास कहने-सुनने लगे। इस सारे सङ्कटको अमरकुमार तो अपनी खुटाईके दोषसे हुआ बतलाने लगा और सुरसुन्दरी उन्हें अपनेही पूर्व जन्मके कर्मोंका दोष मानकर पतिके चित्तसे ग्लानिका भाव दूर करनेकी चेष्टा करनी आरम्भकी।

जब दोनों वहाँतक अपनी-अपनी कहानी सुना चुके, जहाँतक हम अपने पाठकोंको बतला चुके हैं, तब सुरसुन्दरीने इतनी बातें और कहीं, जो हमने अबतक पाठकोंको नहीं बतलायी हैं।

उसने कहा,—"जब विद्याधरने मुझे विदा किया और मेरे साथ बहुतसी चीज़ें दीं, तब मैंने सब कुछ लौटाते हुए उससे कुछ विद्याएँ सीख ली थीं। उसीकी सिखलायी हुई 'रूप-परिवर्त्तन-विद्या' के द्वारा मैंने अपना स्त्री-वेश बदलकर पुरुषका वेश बनाया और विमल वाहन नाम रखकर इस राज्यमें नौकरी करनेके लिये चली आयी ; क्योंकि जब मैं नन्दीश्वर-द्वीपकी यात्रा करने गयी थी, उस समय वहाँ एक पहुँचे हुए साधुने मुझसे कहा था, कि तुम्हारे स्वामी तुम्हें वेनातट नामक नगरमें ही मिलेंगे। इसीलिये मैं विद्याधरके घरसे बाहर होकर सीधे यहाँ चली आयी। मुझे काम भी बहुत ही अच्छा मिला। अभी-

अभी जो जेलका सरदार तुम्हारे सङ्ग बातें कर रहा था, वह मेराही बदला हुआ रूप था। मैंने ही तुम्हें गिरफ्तार करनेका यह ढङ्ग रचा था और तुम्हें यहाँ लाकर मैं तुम्हें कोई कष्ट नहीं पहुँचने देती थी। तुम नामके ही क़ैदी थे। मैंने उस विद्याधरसे और भी कई तरहकी विद्याएँ सिखी हैं। उसीके बलसे मैंने एक बार उस चोरको भी गिरफ्तार कर लिया था, जो यहाँकी राजकुमारीको चुरा ले गया था। वह आप भी बहुतसी विद्याएँ जानता था। इसीलिये कोई साधारण आदमी उसे नहीं पकड़ पाता था। अन्तमें राजाने उसको गिरफ्तार करने वालेको आधा राज्य और उसी खोयी हुई राजकुमारीके साथ व्याह कर देनेकी घोषणा की। तब मैंने यह बात स्वीकार की और वह चोर मेरी विद्याओंके सामने मात होकर गिरफ्तार हो गया। तब तो राजाने प्रतिज्ञानुसार आधा राज्य मुझे दे दिया और अपनी लड़कीका विवाह भी मेरे साथ कर दिया। पर मैं शौक़से इस कामको करती ही रही; क्योंकि मुझे तो तुमको झूठमूठ गिरफ्तार करना था। अब तुम राजाजीसे मिलकर सारी बातें कह सुनाओ; उनकी कन्याके साथ फिरसे तुम्हीं विवाह करो और मेरी सात कौड़ियोंके प्रतापसे पाये हुए राज्यको भोगो। कहो, वे सात कौड़ियाँ राज्य लायीं या नहीं ?"

यह सुन अमरकुमार बेतरह झेंपा और मन-ही-मन बहुत हर्षित भी हुआ। वास्तवमें सुरसुन्दरीने अपने बालकपनकी बात आज अक्षर-अक्षर सच साबित करके दिखला दी।

उपसंहार

यथा समय राजाको सारी बात मालूम हो गयीं और उन्होंने बड़ी धूमधामसे अपनी कन्याका विवाह अमरकुमारके साथ कर दिया। इसके बाद वह अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ अपने नगरको लौट आया। अब वह केवल सेठकाही बेटा नहीं—एक देशका राजा हो गया।

यहाँ आनेपर राजा रिपुमर्दनने अपनी बेटी और दामादके आनेकी खुशीमें सारे नगरमें खूब धूमधामसे उत्सव करवाये। सेठ धनावहने भी अपने घर ख़ासा मङ्गल मनाया।

बहुत दिनों तक इस पृथ्वीमें रहकर नाना प्रकारके सुख भोगते हुए काल पाकर इन धर्मात्मा स्त्री पुरुषोंने—अमरकुमार और उनकी स्त्रियोंने—संसारसे वैराग्य धारण कर लिया और अपने बड़े बेटेको अपनी गद्दीपर बैठाकर आप दीक्षा ले ली। दीक्षाके बाद कुछ दिनोंतक धर्मका पालन करते रहनेके कारण शुक्लध्यान करते हुए अमरकुमार और सुरसुन्दरीने अपने सभी घाती कर्मोंका क्षय कर, केवल ज्ञान प्राप्त किया। उस समय देवताओंने भी बड़े हर्षसे जय-जयकार किया।

ये दोनों केवली अनेक जीवोंको प्रतिबोध देते हुए क्रमसे आयुष्य पूर्ण होनेपर चारों प्रकारके अघाती कर्मोंका (नाम, गोत्र, आयु और वेदनीय कर्मोंका) क्षय कर, अक्षय पदको प्राप्त हुए।

ऐसे उत्तम जीवोंके जीवन चरित्र पढ़ने-सुनने और गुननसे भव्य जीवोंकी आत्माका कल्याण होता है और वे उन्हींके आदर्शोंपर चलते हुए आप भी अक्षय सुखके अधिकारी होते हैं।